सुलगते पसीने

शान्ति सुमन

बीज प्रकाशन
292 आर० एफ०, लोहिया नगर
पटना-800020

© प्रकाशकाधीन

आवरण : नचिकेता

प्रकाशक :
बीज प्रकाशन
292 आर० एफ०, लोहिया नगर
पटना-800020

प्रथम संस्करण : 1979

प्राप्ति-स्थान :
डा० शान्ति सुमन
हिन्दी विभाग
एम० डी० डी० एम० कालेज
मुजफ्फरपुर-842002

मुद्रक : मनोज प्रि० वर्क्स, पटना-६

मूल्य : 8/- (आठ रुपये मात्र)

SULAGATE PASINE *By Nachikata & Shanti Suman*

कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह
को

शान्ति सुमन : 39
जनवादी गीत : एक वक्तव्य : 41
राजनीति का सलीब : 45
फिर पलाश-वन दहके : 46
स्थितियों का गीत : 47
लपटों-भरी आग : 48
हरिजन जैसे दिन : 49
वक्त का पैगाम : 50
चुप्पी का गीत : 51
गर्म हवाएं : 52
भूख के ककहरे : 53
हमसफर हथेलियां : 54
कसी हुई मुट्ठी वालों की कतारें : 55
ताड़ के नुकीले पत्ते : 56
लहू के उठते इशारे : 57
पेड़ : 58
तनी हुई आंखें : 59
महुआ के पेड़ : 60
एक सूर्य रोटी पर : 61
कामरेड रमेसर की मौत पर : 62
लोहों का गीत : 63
हंसिया हाथ में : 64
हिम्मत की गंगा : 65
आग का बीज : 66
आस्था का गीत : 67
चमकी है हंसिये की धार : 68
निर्णय-गीत : 69
सुलगते पसीने : 71

शान्ति सुमन

जन्म : 15 सितम्बर, 1942, कासिमपुर, सहर्षा (बिहार)

शिक्षा : एम०ए० (हिन्दी), पी०एच०डी०

कार्य : एम० डी० डी० एम० कालेज, मुजफ्फरपुर (बिहार) के हिन्दी विभाग में व्याख्याता

उपलब्धियां :
1. ओ प्रतीक्षित, 1970
2. जलझुका हिरण, 1976 (उपन्यास)
3. परछाई टूटती, 1978
4. 'अन्यथा' का सम्पादन

।। जनवादी गीत : एक वक्तव्य ।।

गीत-विधा विकासशील है। इसकी बुनियाद तब पड़ी जब मनुष्य ने अपने को श्रम से जोड़ा। अतएव श्रम-जीवन से उत्पन्न लय और नाद गीत-विधा की अंत:शक्ति हैं और विद्रोह/विरोध उसका मूल स्वर। इस अन्त:शक्ति और मूल स्वर के कारण ही गीत जन-जीवन की सांस्कृतिक मुक्ति का कामी है। गीत ने अपने आन्तरिक विद्रोह का कभी ह्रास नहीं होने दिया। इस विद्रोह ने समसामयिक प्रशासन एवं व्यवस्था तक को हिला दिया है। सामन्ती मानसिकता के कारण आदिकाल और भक्तिकाल में जगनिक और कबीर को भले वह स्थान नहीं मिला जो चन्द और तुलसी को, पर इतने दबाव के बावजूद आज भी कबीर हमारे लिए प्रासंगिक हैं।

आज भी गीत प्रशासन एवं व्यवस्था की दमन-शक्ति के विपरीत अपने को खड़ा करने के लिए प्रतिबद्ध है। इतनी अधिक मिलावट और प्रतिगामिता के आ जाने के बाद आज पुन: गीत अपनी जनवादिता के कारण ही जीवित है। जनशक्ति का अपरिमित विस्तार ही गीत को गति दे सकता है। समझौते जैसे यथास्थितिवाद के लिए गीत में कोई संभावना नहीं होती।

आकस्मिक नहीं है कि आज जनवादी गीतकार अपने गीतों को समसामयिकता अथवा युगीन परिस्थितियों से जोड़ रहा है। उसकी सोच में यह बात है कि गीत मानव-संघर्ष और मूल्यों से अलग होकर नहीं रचा जा सकता। जो गीतकार उनसे अलग होकर रचना करते हैं, निश्चय ही वे यथास्थिति के प्रति समर्पित; पलायनवादी और हताश रचनाकार हैं।

आधुनिक युग में नए जन के उदय के साथ जनवादिता की प्रवृत्ति और स्वस्थ हुई है और उसमें नए आयाम जुड़े हैं। इसके पीछे नए प्रकार की क्रियाशील मानसिकता काम कर रही है। इस मानसिकता का विरोध प्रशासन एवं प्रशासक से नहीं, व्यवस्था एवं व्यवस्था के ठेकेदारों से है। आज यह बहुत जरूरी है कि गीत की आन्तरिक शक्ति की सुरक्षा के लिए उसके बाह्य संसार में प्रवृत्त और सक्रिय हुआ जाय।

नवगीत ने शिकायतों का दस्तावेज अधिक लिखा। अपेक्षित आत्मबल उसके पास नहीं था। इस शिकायती लहजे के कारण उसमें मैनरिज्म आते देर नहीं लगी।परन्तु उसकी कुछ उपलब्धियां भी रहीं। तारसप्तक एवं अन्य सप्तकों

ने जनभाषा का जो पक्ष लिया था, उसको नवगीत ने अन्यतम परिणति तक पहुंचाया। नवगीत की इस जनवादी चेतना ने जनवादी गीतों में एक स्वस्थ भूमिका का निर्माण किया है।

नवगीत में अक्सर ऐसा अहसास होने लगा था कि उसकी लड़ाई सामंती-पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध लड़ी जाकर भी वैयक्तिक है और कई-कई गीत एक साथ मिलाकर देखने पर एक ही गीतकार द्वारा रचित लगते थे, पर जनवादी गीत की लड़ाई समूह की लड़ाई है, उसकी चीख जनसाधारण की चीख है, उसका क्रोध जनता का क्रोध है। ऐसी स्थिति में उसकी चुनौतियां भी जनता की चुनौतियों के सामानान्तर ही है।

बावजूद इसके जनवादिता के नाम पर मोहक भ्रम भी फैल सकता है। अर्थात्, सामन्तों और इजारेदारों का विरोध करती हुई रचना प्रतिक्रांतिकारी भी बन जा सकती है। मगर अधिकांश ऐसा नहीं है। आज राजनीति एक व्यवसाय हो गई है। सत्ताधारी और व्यवसायी में सीधी सांठ-गांठ है। युद्ध और शांति दोनों स्थितियों में यह शासन से जुड़ा होता है। यही कारण है कि भ्रष्ट व्यवस्था से जनता त्रस्त है। जनता योजनाओं और कार्यक्रमों के समाचार पढ़ती रहती है। जनवादी गीतकार का तनाव यह है कि आज वह जिस मोड़ पर खड़ा है, वहां संघर्ष ही संघर्ष है। सम्बन्धहीनता को जीना हमारी नियति है। दोबारा-तिबारा मोहभंग की स्थिति को जीते हुए जनमानस ऊब रहा है। फर्क यह है कि इस ऊब से जनवादी गीतकार के मन में आत्मनिर्वासन या आत्महन्ता आस्थाएं नहीं आतीं। वे अपने को इन प्रतिकूल परिस्थितियों के विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार करते हैं और तब तक युद्ध करने को कृत-संकल्प हैं, जब तक सर्वहारा क्रांति सफल नहीं हो जाय। आदमखोर इरादों के प्रति वे सतर्क हैं और सदियों से छीन लिए गए अपने हिस्सों एवं अधिकारों को वापस लेने के लिए कृतसंकल्प भी। इस मनोबल के आगे सफेदपोश काली व्यवस्था को झुकना ही है।

परिवर्त्तनकामी रचनाधर्मिता के नये-नये तेवर जनवादी गीत-रचना की सार्थकता हैं। संक्रमणशील सामाजिक स्थितियों में जनवादी क्रांति की भांति जनवादी गीत की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है। जनसाधारण से जुड़ने का यह सर्वथा सशक्त माध्यम है। दृश्यकाव्य होने के कारण नाटक

जन-जीवन के नितांत समीप की चीज होते हैं। अपने जीवन में घटित होने-वाले समस्त क्रिया-व्यापारों को वह नाटक में बड़ी आत्मीयता और निकटता से देखता है। पर जनवादी गीतों ने जनजीवन को नये उभार, नये तेज और नयी प्रखरता तो दी ही है, गीतों को गलियों-सड़कों से जोड़ते हुए मंचों तक पहुंचाया है और अपने लक्ष्य एवं कर्म की पहचान कराई है।

अपनी जटिल रचना-प्रक्रिया के अनुरूप जनवादी गीतों के प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट और नुकीले होते हैं। जनवादी गीतकारों को इस बात का ध्यान सदैव रहता है कि इन गीतों को जनता के बीच जाना है, उन्हीं के बीच जीवित और प्रचारित होना है। जनवादी गीतकारों को राज्याश्रय का लोभ नहीं है और न ही वे सुविधाओं के मुखापेक्षी हैं। इसलिये जनवादी गीतकार इस जोखिम और चुनौतियों से भरे उद्देश्य को सामने रखते हैं कि उन्हें जन-संघर्ष को और अधिक तेज करना है। साथ ही जन-शिक्षण के दुहरे दायित्व को भी निभाना है। इसलिये ये जनवादी गीत दृष्टिकोण को बदलने में सक्षम होते हैं। अपने गीतों के साथ ये जनवादी गीतकार मजदूरों, किसानों और सैनिकों के बीच उनके व्यावहारिक संघर्ष का हिस्सा बनते हैं। कुल मिलाकर जनवादी गीत सर्वहारा वर्ग के कला-साहित्य को ही मूल्यवान बनाते हैं। वर्गान्तरण की प्रक्रिया के द्वारा वे वर्गहीन, शोषणमुक्त समाज की परिकल्पना में लगे हैं। एक ओर ये जनवादी गीत अर्द्धसामंती और अर्द्धऔप-निवेशिक समाज-व्यवस्था और उसके शोषण-तंत्र को बेनकाब करते हैं, दूसरी ओर अपनी संघर्षजीवी रणनीति से उन चक्रव्यूहों से निकलने का रास्ता भी ढूंढते हैं। नवगीत ने सब कुछ किया पर जनवादी गीतों की तरह उसमें शोषण के खिलाफ सक्रियता के लक्षण नहीं थे। संघर्ष के लिये कटिबद्ध जनता का पूरा मनोवेग वहां नहीं था। जनवादी गीतकार आत्मकेन्द्रण से मुक्त हैं, इसीलिये शोषण-उत्पीड़न को नियति मानकर जीने के वे खिलाफ हैं।

जनवादी गीतों की रचना-प्रक्रिया में सर्वाधिक उल्लेखनीय बिन्दु है उनकी भाषा। विधा की आवश्यक शर्तों को पूरा करने के बावजूद जनवादी गीतकार भाषा के विषय में सचेत हैं। भाषा उनकी जिम्मेवारी में शामिल है। इसलिये जनवादी गीतों की भाषा सहज, सघन और बेलाग होती है। तल्ख होने के क्षणों में भी उसकी बेबाकी स्पष्ट लक्षित होती है। भाषा की सहजता के कारण जनवादी गीतों के शब्द, बिम्ब, प्रतीक, शिल्प आदि सहज होते हैं। ये जनसाधारण के वस्तुगत संसार के सदस्य होते हैं, इसलिये इनमें अमूर्तन

और पिष्टपेषण तथा एकरसता जैसे ऊबाऊ तत्त्व नहीं होते। निराशा-बोध और ढुलमुलपन जैसी मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों के शिकार भी ये नहीं होते। जनवादी गीतों की भाषा में मानवीय गरिमा की अर्थवत्ता होती है। अब ये भूख लगने पर रोटी के लिये पथरा जाने के बजाय रोटी छीननेवालों के चेहरों पर आग बरसाने में सक्षम हैं। यह सक्षमता जनवादी गीतों की सक्षमता है। इसमें कभी बारूद की तरह फूटकर, कभी बन्दूकों से लैस होकर जनक्रांति के लिये एकजुट हो अपना खून बहाते रहने की रवानी है। जनवादी गीतों के शब्द लहू के कतरे हैं, संघर्ष से मिले हुए जनसाधारण के आंख-हाथ-पांव-पीठ-पेट हैं। जनवादी गीतों की भाषा ने यह विश्वास दिया है कि मेहनतकश इंसान हर वक्त जिन्दा रहता है और बन्द मुट्ठियां जब खुलती हैं तब कितनी ही स्याह रातों के सर्द अंधेरे समाप्त हो जाते हैं। खेत-खलिहानों, मिलों और खदानों में जुते हुए जवानों के पत्थर तोड़ते कुदालों, फावड़ों, धंसी हुई पर तेज आंखों के अनुरूप जनवादी गीतों की भाषा कहीं टूटी-फूटी भी है उनके लिये और कहीं कागज नहीं, इस्पात के पन्नों पर कलम की जगह छेनी से लिखी गई है। जनानुरूप भाषा का बड़ा निदर्शन इससे पहले संभव नहीं हुआ।

।। राजनीति की सलीब ।।

काटेंगे खेत हुई जनवरी
बीतेगी कैसे अब यह घड़ी
चलो कहीं जा कीमत बूझें
हंसी और नींद हम खरीदें

चीजों के दाम जंगली
नदियों के शोर हो गये
रोशनियां बर्फ हो गयीं
बादल कागज के कोर हो गये
सूखे और बाढ़ में गयी
नदियों की मछलियां खोजें
हंसी और नींद हम खरीदें

कच्चे ताम्बे की ताबीज
टूटे तो भरम खुल गये
पहली ओसौनी के बाद ही
हाथों के रंग धुल गये
पोस्टर पर स्याहियां भरी
कागजी फसल तमाम सूझें
हंसी और नींद हम खरीदें

बचपन होता न अब इस देश में
होश नहीं और कंधे झुक गये
थकी-थकी आंखों में टूटते
हौसले अजाने ही दुख गये
राजनीति ने गढ़ी सलीब
टंगी हुई बहस, महज खीझें
हंसी और नींद हम खरीदें.

याद तुम्हारी जब भी आये
ऐसे आये
सन्नाटे में दबी चीख नंगी हो जाये

डोल रहा मन तेज हवा में
जैसे दूकानें टिन की
आंखों में आकाश टूटता
सड़कों पर स्याही दिन की
अपने ही घर के आगे गोली चल जाये
कटहल के पत्तों पर बैठी चिड़िया उड़ जाये

जरद किनारीदार पहनकर
साड़ी पूजा-घर में
जैसे कोई मां असीसती
बेटा कैद शहर में—
राइफलों के कुन्दों से ज्यों कुचला जाये
जैसे बागी देशभक्त कोई मर जाये

किसी तिलस्मी-कथा सरीखे
आसंगों में बहके
तब तो ऐसा लगे कि फिर
कोई पलाश-वन दहके
मगर भूख-रोटी में जैसे महायुद्ध घिर आये
ऊंघ रही आंखों पर गर्म सलाखें भिड़ जायें.

धूप जब-जब तेज होती है
पसीने सर के जमीं को ही भिगोते हैं

बाघ-वन में सुना जाता
पक्षियों का शोर
बहेलिया अब नहीं आता
शर लिये इस ओर
जब हवा के पंख खुलते हैं
काटकर चट्टान हम तब बीज बोते हैं

बंधकों में हंसलियों के
बहुत छूटे रंग
ठूंठ पर लटके हुए थे
वायदों के अंग
अब मगर अहसास होता है
नया पाने के लिये हम बहुत खोते हैं

सही हमने बर्छियों की धार
अपने सहज सीने पर
काटकर सर ले गये
जो थे कभी रहबर
दाग दामन के सुलगते हैं
चेहरे जब और ज्यादा साफ होते हैं

मार सके नहीं हमें जब
भूख और अकाल
कागजों की खेतियों से
कर गये कंगाल
सूर्यमुख जब शाम होती है
कट गये लम्बे दमन के हाथ होते हैं.

यह हवा ऐसी नहीं थी
गंध इससे आ रही बारूद की

कामगारों के घरों का
एक अन्धा आदमी
हो गई नीलाम जिसके
पांव नीचे सरजमीं
धुआं पीकर आग यह
लपटों भरी तब से—
आग यह ऐसी नहीं थी
बदल देगी यह कहानी सूद की

चलते रहे अंधेरे में
हम बांध हाथ हाथों से
पीते रहे पसीने अपने
तने हुये माथों के
सदियों का ऊंचा मकान
अब ढहता है तह से
धूप यह वैसी नहीं थी
दीखती है दूर तक जड़ मंजिले-मकसूद की.

इस उजाड़ तक लाकर छोड़ गये
ऐसे तो ये दिन
लौट चलूं उन मेहराबों में फिर
कभी नहीं मुमकिन

यहां हवा है तेज
बदन बेसुध हिलता है
आंख-आंख में फर्क—
नहीं बेशुक मिलता है
कुछ चौकन्नापन से जोड़ गये—
घाव बड़े कमसिन

यह कपास-सी सुबह
रात खादी कुरते-सी
कटी फसल की महक
लगे सब लिखे पते-सी
चांदी की इंसुली यों तोड़ गये
हरिजन जैसे दिन

रेहन खेत लगे जैसे
बिक गये पसीने भी
पर न खिचे हुए तेवर
बिक सकते जीते जी
रद्दी कागज-से भले मरोड़ गये
ताने दे गिन-गिन
लौट चलूं उन मेहराबों में फिर
कभी नहीं मुमकिन.

पसीने फूले
अलग थे, अब साथ चलकर
पथ चुनें पहले

गांव से थे शहर तक
ये आग के झोंके
बेघरों के पांव तक
उठते गये फोके
महल की दीवार से लग
सो गये झूले

धानबाली-सी खिलेंगी
कामगर की तेज आंखें
झाड़कर उठते दिखेंगे
हाथ जैसे जुड़ी पांखें
और बढ़ आगे नये नित
हौसले छू लें

आंधियों के पांव चलकर
आ गया मौसम
धूल-माटी में खिलेगा
रक्त का परचम
वक्त ये पैगाम लाया है कि
हम कीमत वसूलें.

हवा चुप है, नदी चुप है, बाग चुप है
पर क्या सच है कि जलती आग चुप है

राह पर पत्थर बिछाकर
सो गये जो
रुख हवा का मोड़कर भी
खो गये जो
सिर्फ खलता मुंह जनमता राग चुप है

ढह रही बेबस छतों पर
सूखते लत्ते
नयी किताबों को मिले
कुछ पुराने गत्ते
महासागर का धुना यह झाग चुप है

नहीं सुविधा काढ़ते वे
खड़े औंधे
रच रहे हैं स्वाद के
मीठे घरौंदे

रंग कम, पानी अधिक यह फाग चुप है
पर क्या सच है कि जलती आग चुप है.

डोल रहे मर्जी से
घोंसले हवा में
जैसे दर्जी की मशीन पर
सिलते पाजामे

यहां-वहां उड़ रहे रेत के
भभके हुये बगूले
गर्म हवाएं घर-बाहर की
भूल रहीं झूले
सभी मोड़ हिलते हाथों में
एक जुलूस थामे

खुली हुई बहसें हैं—
उस पूरी तैयारी की
नाली पास पड़ी है कोई
लाश भिखारी की
बरसों से बहते हुए पसीने
को बंजर तामे

चुभती नहीं मुड़ी नोंकवाली
अब आलपिनें
तेज उमस में सटे बदन से
झिलमिल टेरिलिनें
कीचड़ खाते हुये कमल को
छांह बीच घामे.

जनम से ही पढ़ रहे हम
भूख के ककहरे

एक मीठी हंसी पर
संझवातियां मां की
जागती दादी दुहरती
धुन पराती की
याद आते नहीं मौसम
होलियां - दशहरे

सिर्फ छपते कलेन्डर
दिन-माह क्या होते
और सब होते मगर
शोषण नहीं होते
पिघलकर नदियां गईं जम
सब हुए बहरे

नाम सुनकर रोटियों का
कतारें बनतीं
पांव भर फैली थकानें
सीढ़ियां चढ़तीं
अब इशारे भी नहीं कम
तोड़ते पहरे.

निबह तो सकता नहीं अब साथ उसके
इन अंधेरी काइयों पर
और मत फिसलें

पांव की ये बेड़ियां जितनी निकम्मी
हमसफर हथेलियों को
और भी कस लें

वहां भी दीखे जहां हम
थे नहीं शामिल
और जितना ही सहे—
होते गये बुजदिल
बात उलटी इस अंधेरी कोठरी की
पत्थरों पर उगाती हैं
इन दिनों फसलें

तने हाथों में ध्वजों की
आकृतियां पहने
रोम-रोम जले, आंखों—
आग के गहने
टूट जाता पर बदल पाता नहीं
एक टुकड़ा चेहरा पर
लाख वे हंस लें
हमसफर हथेलियों को
और भी कस लें.

धीरे बहो पसीना
अब तो बाकी बहुत उमस है
कसे हुए तेवर पर कब से
अपना ही तो वश है

भूखों की ओ ना मा सी से
शुरू हुआ जो मौसम
एक चीख में बदल गया
जो था पूरा गुमसुम
उंगली की भाषा पढ़ कर
वह जीता लाख बरस है

दूबों से हम उगे हुए
खेतों की कड़ी सतह से
बहा - बहाकर खून - पसीना
जीते कई तरह से
अब तैयार हुई हैं बांहें
छोटा हुआ कफस है

कसी हुई मुट्ठीवालों की
लम्बी आज कतारें
काले शोषण के खिलाफ
आंखों में आग उतारें
जोर - जुल्म पर जीनेवाले
दिखते तहस-नहस हैं.

॥ ताड़ के नुकीले पत्ते ॥

ताड़ के पत्ते बड़े नुकीले हैं
तेवरों में रंग लाल-पीले हैं

धूप के पांवों फटी बिवाइयां
हवा तलाशती हुई दबाइयां
रोशनी के कान बहुत ढीले हैं

पालतू कबूतरों की नुमाइशें
जंग में तब्दील होती कोशिशें
घर कहां, हम सब यहां कबीले हैं

जली हुई आंख में सौ तीलियां
उड़ रही हैं तिलस्मों की चिन्दियां
हाथ में मशाल लिये टीले हैं.

॥ लहू के उठते इशारे ॥

चुप नदी की धार हो जाये
या कभी तलवार सो जाये
रोशनी पर चुप नहीं रहती

वह तुम्हारा तोड़ परती
अंकुरित होना
सांस भर उठती हवा का
स्फुरित होना
तेज तपते लहू के उठते इशारे
पसीने की कोख में जलते सितारे
धूप यह ऐसे नहीं मरती

शोषणों के बीच बंटते
देह के टुकड़े
रख नहीं पाती गुलामी
लौह के पहरे
हम दिशाओं में उगे संकेत-से
लाल दिखते मेड़ वाले खेत-से
मृत्यु भी अमरत्व-सी लगती.

इस तरह होते बड़े ये पेड़
नहीं केवल चुप खड़े ये पेड़

टहनियों में दुख रही
नोकें सवालों की
बज रही समवेत धुन
कलछी - कुदालों की
हो नहीं पाते हरे ये पेड़
जड़ों से बेहद कड़े ये पेड़

आज तक खाते रहे
जो जो दुधमुंहे हिस्से
चुभ रहे उनको उन्हीं के
दांत के किस्से
खुद-ब-खुद उनसे लड़े ये पेड़
भर रहे खाली घड़े ये पेड़

उगी, हां, अब उगी
किरने रोटियोंवाली
सांझ दहशत में सनी
होगी नहीं काली
दीखते कितने बड़े ये पेड़
नहीं मरकर भी मरे पेड़.

अंखुआये मन में खेतों के सौ सपने हैं
जतसारों के गीत हमारे अपने हैं

भूखे पेटों में कोरे
उपदेशों का पचना
लगता मरघट में तुलसी के
बिरवे का उगना
तनी हुई आंखों के आखर अब छपने हैं

शोषण की गठरी सिरहाने
रखना मुश्किल है
अपने हाथों मिटना अब सब से
भारी छल है
साथ चलें मिलकर अंगारों में तपने हैं

लेकर लाल मशाल खेत-
खलिहानों में जायें
शेष समर की कथा लाल
पोस्टर पर चिपकायें
हंसी चुरानेवाले मोटे हाथ लगे कंपने हैं.

।। महुआ के पेड़ ।।

चम्पा के पेड़ नहीं बाबा
महुआ के पेड़ उगाना

खाली हथेली औ' खाली चंगेरियां
चुनती हैं बहुत इन दिनों
मां का सुना ललाट कहता है
बार-बार पसीने की बूंद मत गिनो
जंगली सूअर ना आये
ऊंचा मचान एक बनाना

हाथों से होते हुए पेड़ों तक
बुना हुआ एक मकड़जाला
तोड़ेंगे, क्या छोड़ेंगे ऐसे ही
बन्द पड़ा कब का यह ताला
कामगर बस्ती में खलता है
चौबारा खड़ा पुराना

टहनियों भर पेड़ तले झंडा एक
गाड़ेंगे तोड़ेंगे अड़हुल के फूल
महुआ की छांहों में कीर्त्तन को
धन पर मिहनत को करेंगे कबूल
कहती है भूख-प्यास अपनी
मौसम के जंग छुड़ाना.

।। एक सूर्य रोटी पर ।।

यह भी हुआ भला
कथरी ओढ़े तालमखाने
चुनती शकुन्तला

कन्धे तक डूबी
सुजनी की देह गड़े कांटे
कोड़े - से बरसे दिन
जमा करें किस-किस खाते
अंधियारी रतनार प्रतीक्षा
बुनती चन्द्रकला

मुड़े हुए नाखून
ईख-सी गांठदार उंगली
टूटी बेंट जंग से लथपथ
खुरपी - सी पसली
बलुआही मिट्टी पहने
केसर का बाग जला

बीड़ी धूकती ऊंघ रहीं
पथराई शीशम आंखें
लहठी - सना पसीना
मन में चुभती गर्म सलाखें
एक सूर्य रोटी पर औंधा
चांद नून-सा गला.

।। कामरेड रमेसर की मौत पर ।।

कन्धे पर रख जुआ रमेसर सो गया
फिर वसंत इस बार नकारा हो गया

बड़ी - बड़ी सुर्खी में
लगी निकलने अखबारों में
दुर्घटना की तेज नुकीली
छापे पखवारों में

धुआं उगलता मौसम सुई चुभो गया
सूरज चोला पहन लड़ाकू हो गया

कोंपल-कोंपल झड़ा किया
मन खेतों की मेड़ों पर
पूरी एक उमर सूखी फिर
निर्वासित घेरों पर

लड़कर जीता हिरन आग का हो गया
आसमान तक बढ़ती फसलें बो गया.

।। लोहों का गीत ।।

हम लोहे लोहों के गीत लिखेंगे
मिहनत को भालों पर स्वयं रचेंगे

बन्द दया की भीख आज से
बन्धक बेगारी
तोड़ - फोड़कर रख देंगे अब
कमजोरी-लाचारी
खलिहानों-फसलों से गांव लिखेंगे

ये इतने चुपचाप दीखनेवाले
हल के जोड़े
कहते सीना तान नदी उनकी जो
परबत फोड़े
पेट-पीठ से मिले नहीं अब यही लिखेंगे

बैठ रहे कुंडली मारकर जो उनकी
भूखों पर
चाभी के गुच्छे टूटेंगे उनके झूठ
दुखों पर
हम अपने घरबार क्रांति के नाम लिखेंगे.

।। हंसिया हाथ थमे ।।

धीरे-धीरे बहे पसीना
धीरे नदी बह रे
ललना रे आधी रात गये
रनियां का मन कहरे

इधर गजर का बोल
उधर मुनियां जनमे
ललना रे आंखों नचे सरुप
कि हंसिया हाथ थमे
अगुआरे फूले गेन्दा फूल
बीच-बीच अड़हुल रे
ललना रे बेटी का भाग अमोल
बढ़े दो-दो कुल रे

सोते ही हो गयी भोर
कि सपने आधे हुए
ललना रे देख न पाये रूप
कुंवर दम साधे हुए
ढह जाये ऊंची मुंड़ेर
जले यह जंगल रे
ललना रे जाय जहां यह राह
मिले अपना कल रे.

।। मिहनत की गंगा ।।

सोने थाल गंगाजल पानी
ये सुख अनदेखे हैं
फूटे अलमुनियम के तसले
वाले दिन देखे हैं

पत्ते चुनते दुपहर ढलती
बाग बगीचे में
सांझ गये धुओं के छल्ले
आंत सरीखे हैं

रुखड़े बाल काढ़ते फण
इन भूखों की एंठन पर
छांहोंवाले कथा-पुरुष अब
कितने तीखे हैं

देहों के पहाड़ से निकली
मिहनत की गंगा
झूठ-मूठ सुनते थे सच को
जीना सीखे हैं.

सरकारी कोटा का पहने
धारीदार कमीज
खुद को ऐसा लगे कि
जैसे हो गैरों की चीज

ब्लैकबोर्ड-सा टंगा पड़ा
यह मेघभरा आकाश
तुतले हाथों के आखर
तारों के गये पसीज

कई-कई मोर्चों पर लड़ते
हम पथरीले लोग
कर लेती आकार ग्रहन
जैसे भीतर की खीज

काले कौवे खा जाते हैं
छीन हाथ से रोटी
अभी तलक उनको जीने की
आई नहीं तमीज

अपना घर पक्का बनवा
तूफान उड़ाते जो
उनके अगुआरे बोयेंगे
गरम आग का बीज.

नहीं चाहिये आधी रोटी और न जूठा भात
यह खोटी तकदीर एक दिन खायेगी ही मात

हम गरीब मजदूर भले
हम किसान मजबूर भले
पर अपनी लाचारी का अब गीत न गायेंगे
ताकत नई बटोर क्रांति के बीज उगायेंगे

कच्चे गीतों से अच्छा है
नारा एक लिखो
बंधे हुए द्वीपों से बेहतर
धारा एक लिखो
लेकर श्रम का नाम चले
लाल मशालें थाम चले
हाथ-हाथ मिल रोशनियों का तीज मनायेंगे

टुकड़े - टुकड़े जुड़े मगर
पेबन्द नहीं होंगे
जो बादल गरजे भर
वह अनुबंध नहीं होंगे
खाई - खन्दक पांव तले
कट जायेंगे क्यों न गले
तिलक पसीने का रचकर हम जोत जायेंगे

अब बहसों को छोड़ें साथी
भाग्य नया बदलें
नए सूर्य के स्वागत में
फसलों-से हम झुक लें
जोर-जुल्म अब बहुत खले
आग हथेली पर रख ले
देखें सब दम-खम वैसा संगठन बनायेंगे.

।। चमकी है हंसिये की धार ।।

पकने लगी हैं फसलें
दीखते हैं दूर के पहाड़
रे साथी, चमकी खूब, चमकी है हंसिये की धार

बीजों की जगह
पेट-पीठ ही तो बोये हैं
सर्द हाथों को
इस्पातों से हम धोये हैं
रात भर अलावों पर
सिकते हैं सपने सुकुमार
रे साथी, खूब चमकी है हंसिये की धार

कथरी की जगह
फटी आंखों को सोना है
अब नहीं साल-साल
गंजी पर जीना है
बैल के गले में भी
लाल कौड़ी का होगा निखार
रे साथी, खूब चमकी है हंसिये की धार

पानी की जगह
क्यों पियें हम पसीना
अपने सवालों से
उनको है क्या लेना
हौसले नये हैं
सब कुछ हो जायेगा इस बार
रे साथी, खूब चमकी है हंसिये की धार

अधभूखे पेटों में जबतक सुलगेगी चिनगारी
आदमखोरों की गफलत में भटकेगी बेकारी
साथी, तबतक निश्चय ही—
संघर्ष रहेगा जारी

झोपड़ियों की ताकत क्या
समझें ये महल सुहाने
नये तेवरों के जंगल के
रस्ते जाने - माने
चली भले, अब नहीं चलेगी ठगी इजारेदारी
नई कलम से लिक्खेंगे इतिहासों की लाचारी
साथी, तबतक निश्चय ही—
संघर्ष रहेगा जारी

पेटों के मजमून स्वयं
कह देंगे युग का हाल
शोषण और दमन पर दहक
उठेगी लाल मशाल
अधिकारों को नये सिरे से पाने की तैयारी
लाल निशान तले जुड़ जायेगी दुनिया सारी
साथी, तबतक निश्चय ही—
संघर्ष रहेगा जारी.

।। सुलगते पसीने ।।

(१)

ये सुलगते पसीने चन्दन बनेंगे
बनेंगे—चन्दन बनेंगे

मुक्ति के ये मंत्र श्रम के
शोषणों के सघन तम के
ये निबिड़ संघर्ष के साधन बनेंगे

पेट ही जब पीठ बनते
पांव भी तब दीठ बनते
सर्वहारा-शक्ति के कुन्दन बनेंगे

तेवरों की सरजमीं से
उठ रहे सर आदमी के
लहकती चिनगारियों के कण बनेंगे

किताबें लिख रोटियों की
दूध, पानी, दवाओं की
नयी आगों में ढले इंधन बनेंगे

पांव की बेड़ी कटेगी
फिर नयी दुनिया रचेगी
बढ़ रहे जुल्मोसितम पर रण बनेंगे

यातना के गढ़ ढहेंगे
ये समर सौगुन बढ़ेंगे
विप्लवी संघर्ष के वाहन बनेंगे-

ये सुलगते पसीने
हर भाल पर चन्दन बनेंगे

ये पसीने रोटियों की
शक्ल में ढलते
या दहकती आग-से
हर आंख में पलते
कालगत इतिहास के
हर पृष्ठ पर अंकित मिलेंगे

वक्त की यह मांग है
हम संगठित हो लें
नये युग की रोशनी से
चेतना धो लें
अब न शोषण औ' दमन की
आग में जलते रहेंगे

हमें खोने के लिए
बस बेड़ियां ही हैं
और पाने के लिए
सम्पूर्ण धरती है
हाथ में हथियार ले हम
साथियो ! बढ़ते चलेंगे.

—शासुन